मम्मट अभिमत रस दोष

एम्.ए – II / IV सेमेस्टर

डॉ उमा शर्मा
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
एन.ए.एस (पी.जी.) कॉलेज, मेरठ

एम.ए. II, IV Sem.
डा० उमा शर्मा
संस्कृत - विभाग

विषय : मम्मट अभिमत रस-दोष

1- प्रथम रस-दोष- व्यभिचारी भाव की स्वशब्द वाच्यता (कथन)
व्यभिचारी भावों का व्यभिचारी शब्दों (निर्वेदादि) से कथन करना उक्त दोष की श्रेणी में परिगणित होता है यथा-

सव्रीडा दयितानने सकरुणा मातङ्गचर्माम्बरे
सत्रासा भुजगे सविस्मयरसा चन्द्रेऽमृतस्यन्दिनि ।
सेर्ष्या जह्नुसुतावलोकनविधौ दीना कपालोदरे,
पार्वत्या नवसङ्गमप्रणयिनी दृष्टिः शिवायाऽस्तु वः ॥

उपर्युक्त उद्धरण में - व्रीड़ा करुणा, त्रास, विस्मय, ईर्ष्या तथा दैन्य आदि व्यभिचारी भावों का अपने वाचक शब्दों द्वारा कथन होने से व्यभिचारी भावों की स्वशब्दवाच्यता दोष है। यहाँ 'सव्रीडारि' के स्थान पर 'ध्यानम्रादि' पाठ उचित है।

2. (i) रस का स्वशब्द से कथन - जहाँ अर्थात् जिस उदाहरण में रस के वाचक शृंगारादि का अपने वाचक शब्द से कथन किया जाता है, वहाँ उक्त दोष होता है जैसे-
"तामुद्वीक्ष्य कुरङ्गाक्षीं रसो नः कोऽप्यजायत"।

(ii) रस के वाचक शृंगारादि का स्वशब्द से कथन -
" आलोक्य कोमलकपोलतलाभिषिक्त . . .
शृङ्गारसीमनि तरङ्गितमातनोति ॥" अर्थात् उस रमणीय मूर्ति को देखकर अपने बाल्य भाव का अतिक्रमण करके यह तरुण 'शृंगाररस' की सीमा में तरङ्गित हो रहा है।

उपर्युक्त प्रथम उद्धरण में 'रस' के स्थान पर "कोऽप्यजायत विकारः" होता तो दोष न होता अब 'रस' शब्द का कथन होने से स्वशब्दवाच्यता दोष है।

द्वितीय उद्धरण में विशेष-रस शृंगार पद वाच्य है। यहाँ शृंगार पद से गृहीत सम्भोग द्वारा उसके विभावादि का आक्षेप हो जाता है किन्तु शृंगार पदवाच्य होने के कारण उसके आस्वाद का अपकर्ष हो हुआ है।

3. स्थायी भाव का स्वशब्द से कथन – जिस उद्धरण में स्थायी-भाव का स्वशब्द से कथन होता है, वहाँ उक्त दोष होता है यह भी दो प्रकार का हो सकता है-(क) सामान्यतः शब्द-वाच्यता एवं (ख) विशेषतः स्वशब्दवाच्यता यथा

"सम्प्रहारे प्रहरणैः प्रहाराणां परस्परम् ।
ठणत्कारैः श्रुतिगतैरुत्साहस्तस्य कोऽप्यभूत्" उक्त उद्धरण में 'वीर रस' के स्थायी भाव 'उत्साह' का स्वशब्द से कथन हुआ है। अतः रसदोष है।

4. अनुभाव की कष्ट कल्पना का उदाहरण –

"कर्पूरधूलिधवलद्युतिपूरधौत, दिङ्मण्डले शिशिररोचिषि तस्य यूनः ।।
लीलाशिरोंऽशुक-निवेश-विशेषक्लृप्ति, व्यक्तस्तनोन्नतिरभून्नवयौवना सा ॥"

उपर्युक्त उद्धरण में उद्दीपन की अवस्था में नायिका को देखकर नायक में स्वेद, रोमाञ्च आदि अनुभाव उत्पन्न हुए होंगे, जिनका वर्णन नहीं है, वे कठिन कल्पना से ही जाने जा सकते हैं।

5. विभाव की कष्ट कल्पना- जिस काव्य में प्रकरणादि ज्ञान के द्वारा विलम्ब से (कष्टपूर्वक) विभाव की कल्पना होती है वह काव्य उक्त रस दोष से युक्त होता है क्योंकि विलम्ब के कारण आस्वाद में विघ्न होता है यथा –

"परिहरति रतिं मतिं लुनीते स्खलति भृशं परिवर्तते च भूयः।
इति बत विषमा दशाऽस्य देहं परिभवति प्रसभं किमत्र कुर्मः।।"

उपर्युक्त उद्धरण में वर्णित – बेचैनी का होना, बुद्धि का नष्ट होना, बार-बार गिरना, लोट-पोट होना आदि अनुभाव केवल श्रृंगार रस में ही नहीं अपितु 'भयानक' एवं 'वीभत्स' रस में भी सम्भव हैं। अतः कामिनी रूप 'विभाव' की प्रतीति कठिनाई से होने के कारण यहाँ 'विभाव की कष्ट-कल्पना' नामक रस दोष है।

6. प्रतिकूल विभावादि का ग्रहण - जिस काव्य में वर्णित रस यथा शृंगारादि के प्रतिकूल अन्य रस के अनुकूल विभावादि का ग्रहण किया जाता है वहाँ उक्त दोष होता है-

" प्रसादे वर्तस्व प्रकटय मुदं संत्यज रुषं . . . . . .
न मुग्धे, प्रत्येतुं प्रभवति गतः कालहरिणः " उद्धरण में शृंगार-रस के विरुद्ध अनित्यताप्रकाशन रूप शान्त रस के 'उद्दीपन' विभाव तथा उससे (अनित्यता प्रकाशन) से प्रकाशित 'निर्वेद' रूप व्यभिचारी भाव का ग्रहण किए जाने के कारण रस-दोष है।

7. (अङ्गभूत) रस की पुनः पुनः दीप्ति - वह रस दोष है, जहाँ किसी अङ्गभूत रस का परिपोष हो जाने पर भी (रुक-रुक कर) बार-बार उसे उद्दीप्त किया जाता है। यह दोष 'प्रबन्ध काव्य' में ही सम्भव है। अतः कुमारसंभव (4-1) के रति-विलाप-सन्दर्भ में उक्त दोष होने के कारण उसको उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया गया है ~~इसमें~~ "अथ मोहपरायणा सती" में 'अथ' शब्द से 'करुणरस' का प्रारम्भ किया गया है। तत्पश्चात् 'अथ सा पुनरेव विह्वला' में 'अथ' तथा ~~पुनरेव विह्व~~ पुनः शब्दों से फिर रस की दीप्ति है। तदनन्तर पुनः 'तमवेक्ष्य रुरोद सा भृशम्' में "करुण" को फिर उद्दीप्त कर दिया गया है। अतः रस ही रस का पौनः पुन्येन वर्णन सहृदयों के लिए अरुचिकर हो जाता है। इस दोष का उल्लेख ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने भी किया है-

" परिपोषं गतस्यापि पौनः पुन्येन दीपनम्।
रसस्य स्याद् विरोधाय वृत्त्यनौचित्यमेव च ॥" ध्वन्यालोक 3.9.

अतः अभिप्राय यही है कि रस का पूर्णपरिपाक हो जाने पर उसका पौनः-पुन्येन उद्दीपन करना रसानुभूति में बाधक होता है। अतः रस-दोष है।

8. अकाण्ड में रस का प्रथन (विस्तार) अवसर के अनुकूल रस का वर्णन न होने पर उक्त दोष होता है यथा वेणीसंहार के द्वितीय अङ्क में अनेक वीरों के विनाश का प्रसङ्ग उपस्थित होने पर भानुमती के साथ दुर्योधन का शृंगार-वर्णन अनुचित होने से दोष है।

9. अकाण्ड में रस का विच्छेद (भंग) — ध्वन्यालोक में भी इस दोष का 'अकाण्डविच्छित्ति' नाम से निर्देश किया गया है। इसका अभिप्राय है बिना अवसर के रस-विच्छेद, जैसे 'वीरचरित' नाटक के द्वितीय अंक में राम तथा परशुराम के युद्धोत्साह में अविच्छिन्नरूपेण प्रवृत्त होने पर राम की यह उक्ति- (कङ्कणमोचनाय गच्छामि' (विवाहोपरान्त का उत्सव) सहृदयों की रसानुभूति में बाधक होने से रस-दोष है।

10. अङ्ग (अप्रधान पात्र या रस) का विस्तार से वर्णन — प्रतिनायक आदि के विस्तृत वर्णन से तद्गत रस का ही प्रधान रूपेण आस्वादन होने तथा नायकगतादि रसास्वादन न होने से यह रस-दोष होता है जैसे- हयग्रीव' नामक नाटक में नायक 'विष्णु' की अपेक्षा 'हयग्रीव' (प्रतिनायक) की जल-क्रीडा एवं वन-विहारादि क्रीडाओं का विस्तार से वर्णन दोष है,

11. अङ्गी का अननुसन्धान- जैसे 'रत्नावली' नाटिका के चतुर्थ अङ्क में 'बाभ्रव्य' के आ जाने पर राजा 'उदयन' अवान्तर विषयों में प्रधान नायिका (सागरिका) को विस्मृत कर देता है। अतः नाटिका में प्रतिपादित 'शृंगार रस' विच्छिन्नप्राय प्राय हो जाने के कारण यह रस दोष है।

12. प्रकृति का विपर्यय- आ० मम्मट ने उक्त रस-दोष का विवेचन ध्वन्यालोक तथा ध्वन्यालोक-लोचन के आधार पर किया है, आनन्दवर्धनाचार्य ने ध्वन्यालोक (3.10) प्रबन्धगत रस के व्यञ्जक हेतुओं के प्रसङ्ग में अनौचित्य का उल्लेख किया है तथा "अनौचित्यं तु प्रकृत्यौचित्यात्" इस प्रकार प्रारम्भ करके विस्तारपूर्वक प्रकृति-सम्बन्धी औचित्य का वर्णन किया है।

ध्वन्यालोक की व्याख्या में आ० अभिनवगुप्त ने भी इसका विशद विवेचन किया है। उनके प्रस्तुत वाक्य में ही सारार्थ निहित है—

"एतदुक्तं भवति-यत्र विनेयानां प्रीतिरवणता न जायते तादृक् वर्णनीयम्"

'दशरूपककार' 'धनञ्जय' ने भी सार रूप में यही कहा है जिस प्रकृति (नायक) के लिए जो वर्णन अनुचित हो, उसका वहाँ वर्णन 'प्रकृति-विपर्यय' रस-दोष है। प्रथमतः प्रकृति (नायक) तीन प्रकार की होती है- 1- दिव्य (देवता-इन्द्रादि) 2. अदिव्य (मनुष्य, दुष्यन्त वत्सराजादि) 3. दिव्यादिव्य (राम एवं कृष्णादि)

उक्त तीनों के पुनः चार-चार भेद हैं—

1- वीर रस प्रधान धीरोदात्त (श्रीरामादि)
2. रौद्र " " धीरोद्धत (परशुरामादि)
3. शृंगार " " धीरललित (उदयनादि)
4. शान्त " " धीरप्रशान्त (जीमूतवाहनादि) उक्त प्रकृतियों में रति, हास, शोक तथा अद्भुत भावों का अदिव्य (उत्तम) नायकों के समान दिव्य नायकों में भी वर्णन किया जाना चाहिए किन्तु शृंगारादि रति भाव का देवताओं के विषय में वर्णन नहीं करना चाहिए क्योंकि इस प्रकार का वर्णन उनके माता-पिता के संभोग-वर्णन के समान नितान्त अनुचित है जैसे कुमारसंभव में वर्णित शिव-पार्वती-विषयक संभोग-वर्णन असमीचीन है।

प्रकृतियों का कार्य-विषयक औचित्य- प्रकृति-रहित क्रोध और स्वर्ग-पाताल-गमन अथवा समुद्र-लंघन आदि के उत्साह का वर्णन केवल दिव्य प्रकृतियों में ही करना चाहिए जैसे—

"क्रोधं प्रभो! संहर संहरेति यावद् गिरः खे मरुतां चरन्ति।
तावद् स वह्निर्भवनेत्र जन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार॥"

12. प्रकृतियों का सम्बोधन विषयक औचित्य - आ॰ मम्मट ने किस सम्बोधन का कौन किसके प्रति प्रयोग करे, इसके औचित्य का भी विवेचन किया है। जैसे - तत्र भवान् तथा भगवन् आदि सम्बोधन उत्तम पात्रों के लिए प्रयुक्त होना चाहिए अधम पात्रों के लिए भट्टारकादि सम्बोधन प्रयुक्त होना चाहिए।

देश, काल, अवस्था, जाति आदि के वेश-व्यवहार का भी उचित वर्णन किया जाना चाहिए।

13. अनङ्ग (प्रधान रस के अनुपकारक) का वर्णन - उक्त दोष का उदाहरण है 'कर्पूरमञ्जरी' नाटिका में नायिका विभ्रमलेखा और अपने द्वारा वर्णित वसन्त-वर्णन की उपेक्षा करके, चारणों द्वारा वर्णित वसन्त-शोभा की राजा चण्डपाल द्वारा प्रशंसा इससे नाटिका के प्रधान रस श्रृंगार की अभिव्यक्ति में कोई सहायता नहीं मिलती।

आ॰ मम्मट ने 'रसे दोषाः स्युरीदृशाः" अन्य दोषों के समायोजन का भी संकेत किया है ध्वन्यालोक में आ॰ आनन्दवर्धन ने कहा है -

"अनौचित्यादृते नान्यद् रसभङ्गस्य कारणम्।
औचित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा॥"

अतः अभिप्राय यह है कि औचित्यानौचित्य ही काव्य के गुण-दोष विधायक होते हैं।